स्व० अशोक कुमार नाहटा

जन्म

२० सितम्बर १९५७

स्वर्गवास

२२ दिसम्बर १९८०

समर्पण

कराल काल की कादम्बिनी
में सहसा चकाचौंध उत्पन्न कर
महाज्योति में विलीन,
मन्त्र प्रफुल्ल प्राय कलिका
मादक गन्ध से प्रपूरित होने के
पूर्व निःशेष पवन मे विलीन
वासन्ती वनवल्लरी पर प्रस्फुटित
होने वाले रसराज। मलय समीर
के झोंके से अचानक लुप्तप्राय
अशोक! तुम निश्चित ही शोक रहित
निर्ग्रन्थ, मुक्त अवधूत के समान
अनन्त आकाश के नीचे विस्तृत
धरती के बीच समाधिस्थ अनन्त
ज्योति में विलीन हो गये। तुम्हारे
शत सहस्र दलों के मानस शतदल पर
अंकित ये कुछ
भावमयी क्षणिकाएँ समर्पित हैं।

—भँवरलाल नाहटा

अनुक्रमणिका

तस्मै श्री गुरवे नमः

सहजानन्द
अप्रतिम संत
जड़ चेतन के
भेद विज्ञान से
सुतरां किया—
भव भ्रमण का अंत
कठिन साधना
सम्यक् आराधना
युगप्रधान
ज्ञानावतार
बन गये विदेह
एक देह धार
कोटि कोटि
नमस्कार ।

आत्मानुभूति

समुद्र के गहन तल में जाकर
प्राप्त किया रत्नों का जो आकर
उससे भी तो बढ़कर
गरिमामय है अंतस्तल,
जरा छूओ तो—
पाओगे शान्ति
जो बता गये संत
नवनीत वही
वैचारिक सही
पिण्डे सो ब्रह्माण्डे
मूर्ख खोजे खण्डे खण्डे
अंतर में देखो
बाहर मत झांको
परिपाक उसीका
श्रुति
स्मृति
फलत मन विश्रान्ति
अपगत उद्भ्रान्ति
वही तो है अनन्त शान्ति।

दूरदेशी लब्धि

ज्ञान दर्पण
अवस्थित है अन्तर में
निर्मल कर
द्वारा — प्रभु अर्पण
देखोगे तो
प्राप्तव्य
समग्र रचना
चौदह राजलोक की ।
दूरदेशी लब्धि से
फिर नहीं भटकना
अन्तर् चक्षु से
द्रष्टव्य अमित
बनो आत्म-समाहित ।

सिद्ध भगवान

अशरीरी सिद्ध
हैं अवश्य
निराकार कैसे ?
आत्म-प्रदेश
निर्वाण समय जैसे ।
आकृति स्थित
रिक्ताकाश
ठोस त्रिभाग
वही मुद्रा कर
सिद्धशिला पर
ज्योति में ज्योति
समाहित
स्वरूप मगन
प्रकाश शाश्वत
चैतन्य मूर्ति
वन्दन शत-शत ।

सिद्धालय सुख-सन्देश

सन्देश चाहिए
सिद्धालय का
कैसे है वे
अशरीरी
कृतकृत्य
अनन्त सुखमग्न
है सही
संप्रेक्ता नहीं
कौन कहे
वापस आकर
लवण पुत्तलिका
गई समुद्र तल
थाह लेन
स्वयं घुल-मिल
एक मेक हुई
सर्वज्ञ प्रभु के माध्यम
और अनुभूति से
अभिमान करो
हे सिद्धों के साधर्मी तुम।

आत्म-ज्योति

यह अगम्य
अदृश्य मार्ग
एकाकी
पद-चिह्न नहीं
कुछ भिन्न नहीं
विहंग-व्योम
मीन पद जल ज्यों
आवश्यक निर्देश
उद्भासित करो—बन द्रष्टा
स्वयं प्रकाशी
दिव्य, शाश्वत
आत्म ज्योति ।

आत्मा का अस्तित्व

क्या है आत्मा ?
यह दृश्य नहीं
फिर भी बतलाओ
कथ्य नहीं
अव्यक्त सही
अभिव्यक्ति क्या ?
अनुभूति करो ।
यह तुरत उठा
पत्थर मारा
पीड़ा होती है
कहाँ है, यह
दिखलाओ सही
उत्तर पाया
अनुभूति यही ।

आत्म-गुरु

कण्टकाकीर्ण
भीषण अटवी
है व्याघ्र व्याल
थकित चाल
घन अन्धकार
पगडण्डी हीन
एकान्त
क्लान्त
भक्ति प्रवण बन भाव दीन
हार्दिक पुकार
लोम-हर्षक
नहीं मार्गदर्शक
प्रगटे गुरुदेव
आत्मा स्वयमेव
मार्ग प्राप्त
भय सब समाप्त
अचिन्त्य शक्ति
कहाँ अभिव्यक्ति!

शाश्वत आत्मा

मृत्यु स्वरूप
जन्म ग्रहण का
पूर्व रूप
तू आत्म भूप
पर्यायनष्ट
चक्रादि वस्त्रे
ज्यों तेलयान
चालक आत्मा
करता प्रयाण
खेले नाटक
ज्यों सूत्रधार
नव देहधार
होता ट्रांस्फर
यह कारागार
नहीं लेश बद्ध
होओ सन्नद्ध
कषाय चार
दो निवार
हो प्राप्त शांति
कर अभिव्यक्ति
अनन्त शक्ति
यही तो मुक्ति।

जिनेश्वर की शीतलता

कितना शीतल
है वदन चंद
देखो निर्द्वन्द्व
क्यों
भव बन्धन के
कटे फन्द
भस्मीभूत
संसार बीज
अद्भुत चीज
किस प्रकार
होते निसार
दग्ध ताप विटप
पल्लवित हों
हिमपात भस्म
हो नहीं उदित।

पावापुरी क्रन्दन

पावापुरी
महातीर्थ धाम
निर्वाण स्थान
श्री महावीर
भव-सिंधु तीर
ठीक यहीं से ऊपर
हैं समासीन
सिद्धशिला पर
परम प्रीति
कर नमन मीत
वे बहुत दूर
चिन्ता नहीं
निशाना सही
टेलीविजन यही।

दर्शन मोह

पर्दे की ओट में पहाड़
दर्शन मोह को
दो पछाड़
क्या है वह ?
आत्मा देह के सह
है अवश्य
पर कर्मवश्य
देह को आत्मा
मानता ही श्रद्धा का खात्मा
भिन्न मानो
ज्यों असि म्यान
होगा सही आत्म-ध्यान
रहना अलिप्त
अद्रोह
अपगत होगा
दर्शन मोह ।

शल्य

दूर कर शल्य
गतिशील बनो
सशल्य
कभी नहीं
चल सकता
माया
निदान
मिथ्या-दर्शन
इन तीनों का
अपहर्त्ता
है मोक्ष मार्ग का
अनुसर्ता।

गुणस्थानक

चतुर्दश सोपान—
मंजिल दूर
अधिकांश प्रथम तल
पकड़े बैठे
विरले
चौथे-पंचम में
कुछ आगे लछमन झूला
आत्म वीर्य
उल्लास युक्त
चढ़े वीर
दसवें से निष्क्रम
करना हार्द जय
ग्यारहवाँ है तल विहीन
ठग फन्दा भी
लटिका सा
पद को धरते ही
न गिरते
जो दूर चढ़े
उत्तुंग शिखर
वे भगवत् पूर्ण।

ऊपरवाला

ऊपर देखा
दृष्टि में आया
केवल नीलाकाश
शून्य में खो गए
किन्तु, मानो यह विश्वास
ऊपरवाले की
दूरवीक्षण
शक्ति तेज है
ले शिक्षण
रह सतर्क
बच फिसलन से
पकड़ें पथ।

बाल-दृष्टि

विभिन्न
भाजनों में
भर के रखे
निर्मल गंगाजल
आगार-दाने
पा टेकर फिर
नगर पड़े
टूट
फूटे
बह गए
नालों से
नाना गया
होत रहा,
पचने का
टे ।

हठाग्रह

आशाम्बरत्व बिना
कहते हैं मोक्ष नहीं
अनेकान्त सत्य है
देह भी तो
आवरण है
परमाणुमात्र
का अनस्पर्श
ही मोक्ष है
फिर कहाँ
अम्बर
बाधक।
अनेकान्ती बन
त्याग हठाग्रह
साधक।

स्वर की भाषा

स्वर की भाषा
पहचानो
व्यञ्जन पर
मत लक्ष्य करो
मतभेदों में भी
है अभेद सर्वत्र
मूल को पकड़ो
मत शाखाओं का पक्ष करो।

नहीं साथ कुछ

यह मान, कीर्ति
शूकरी-विष्ठा
किस पर लिप्सा है
अभिमानी !
सूई भी
नहीं ले जाओगे
वृथा मोह
यह मान्य करो
जड़ पुद्गल की देह
मरघट की सम्पत्ति
मृतिका में
मिल जायेगी
निश्चय जानो
कर्म कचरा
रहेगा साथ ।

नियम (वृत्ति संक्षेप)

अथाह जलाशय में
मत कूदो
बाल्टी के
मर्यादित जल में स्नान—
क्या स्नान नहीं ?
सुनियमन है ।

दृष्टिराग

विवेक को
ताक में रख
आँख और कान
बंद कर
अपनी
कल्पित धारणा को
सही मान
चलना ही है
दृष्टिराग !

अप्रत्याख्यान

आँखें मूँद
बे-लगाम अश्व पर
आरूढ़ हो
झाड़-झखाड़मय
बीहड़ में
भावी आशा से
फँस जाना
यही तो—
अप्रत्याख्यान !

अप्रत्याख्यान

आँखें मूँद
बे-लगाम अश्व पर
आरूढ़ हो
झाड़-झंखाड़मय
बीहड़ में
भावी आशा से
फँस जाना
यही तो—
अप्रत्याख्यान !

पश्चात्ताप

धधक उठी ज्वाला
आत्मगुण घातक को
दग्ध किया
परिताप रहा
अंगारे सजीव
पश्चात्ताप वही
उसकी छाई
जीवन भूतल पर
घन साद
प्रशान्त जल
मिलकर
विकसित करती
अभिनव सुमनस् ।

पचीसवीं शताब्दी

पचीस सौ की
मेल चली
गुरुडमवादी आ
लाइन पर
अवरोध
वितण्डा में
अड़े-पड़े ।
समर्थक भी
अपनी
पुष्टि-चौरासी के
चक्कर में
प्लेटफार्म पर
उलझे रहे
मेल
निकल गई !

महावीर अज्ञात

महावीर आये
दिक्पटोक्ति
दृश्य परिग्रही
सितपटोक्ति
अलकरण नहीं
इन ऐकान्तिकों से
अनेकान्ती
रहे अज्ञात
महावीर चले गये
ये परस्पर
बद्धमूल
अहकार
पोषण करते रहे।

गजसुकुमाल

मस्तक पर
अंगीठी जलती है
अक्षुब्ध ध्यान
नहीं लेश म्लान
क्षमानीर
स्नपित धीर
मम वस्तु नहीं
मैं अजर-अमर
अगाध आत्मा
धन्य तरुण मुनि
गजसुकुमाल ।

एक संस्मरण

योगी मिला
हिमाचल पर
घन शीत ठिठुरता
करुणार्द्र हो दिया
अर्द्ध फालक
कम्बल का
पुनरावृत्ति
महावीर की
धन्य गुरु
सहजानन्द घन ।

जिनालय

ज्वालाओं के बीच
शान्तिधाम
ऐं स्थिर पद्मासन
शुक्ल ध्यान
दें अमित ज्ञान
जीवन की घटिका में चाभी
भर लेना अध्यात्म-प्राण
यह दीप स्तंभ
मार्ग-दर्शक
भव समुद्र का
निस्तारक
है मोक्ष निश्रेणी
जिन-मन्दिर।

संवत्सर-दान

अपना सुख दुखियों में बाँटा
निर्ग्रन्थ वर्षेप्सित दान दिया
बन मात्र अकिंचन करुणाकर
अटवी का दुर्गम मार्ग लिया
आत्मजयी बन के पाया
वह ज्ञान लुटाया सब जग में
लोगों को दे बोध बीज
सत्पथिक बनाया शिव मग में।

विजय-विजया

समवयस्क
परिणीत
अज्ञात नियम
प्रीति-सिक्त
वय तरुण
एक शय्या-शयन
पर निर्विकार
निर्लेप गुप्त
कज्जल गृह
निवास
नहीं रेखा कल्मष
ब्रह्म-प्रकाश ।

आर्द्रकुमार

लोह जंजीर
सहज भग्न
किन्तु
मोह-मित्त
सूत्र तन्तु
रहे अभग्न
द्वादश संवत्सर
समर ध्यान
तब हो सके
आत्म-मग्न।

गुरु

जन अनढ़
गुरु के हाथ चढ़
ज्यों
जग सुपन लाए
शान चढ़ी
तलवार।

गुरु

मिट्टीका लौंदा
पदतल में रौंदा
गुरु कुम्भकार
ने चढा चाक
कर घट तैयार
सह अग्नि-ताप
मस्तक चढ
लाता
निर्मल वारि।

अंशुमाली

नित प्यासा
(अंशुमाली)
सहस्र जिह्वा—
(किरणों से)
जल-थल का
खारा-मीठा
कटुक-तिक्त
गन्दा-निर्मल
सारा जल
चाट जाता है
फिर भी तृषा का
इस शोषक से
धर्म-पक्ष पे
शोषण का।

वप का अभाव

अति दीर्घकाल
तीव्र ताप
पवन-संयोग-हीन
दीन पड़ा
पौधा
रूप ही
भविष्य भी
मान क्षार।

अज्ञान

ज्ञान दीप
ग्रन्थ में नहीं
हाथ में मशाल
तो यह
नहीं देव मशाली
ज्ञान
पन्थ जय ।

इन्द्रिय विषय

पंचेन्द्रिय विषय में
जो उलझे
नहीं कभी
समस्याएँ सुलझे
भौतिक सुख
होता दूर परे
यह आत्मा
सहज समाधि वरे।

सच्चा आत्मध्यानी

आत्म-ध्यान
अभ्यासी
नहीं कभी
पुद्गल सुख प्रत्यागी
आत्म-लब्धि
उदित
तदपि उदासीन
नहीं दृष्टि उधर
चढता निश्चित
श्रेणि-शिखर।

आशा-त्याग

स्वर्ण-सिद्धि
की दुर्लिप्सा में
भटके दर-दर
नहीं मिल पाई
जब हुए विरक्त
आत्म-निष्ठ
पद-पद में
ऋद्धि आई
विष्ठा तुल्य
उसे जाना
यह सत्य रहस्य
पहचाना जब।

चेतना-चेतन मिलन

पति-पत्नी
मिलन की
शुभ वेला
अव्यक्त सुखों का
है खेला
सुमति सखी के
माध्यम से
शुद्ध चेतना
का
चेतन पति से
हो जाता मेला ।

आहारक शरीर

चर्म चक्षु
अगम्य
सूक्ष्म देह
सदेश-वाहक
अति अल्प
समय
गति
महाविदेह
गत सन्देह ।

चमरोत्पात

कालरात्रि में
जात कौन ?
पद लटका
उपविष्ट
विकराल विक्रिया
भेदनार्थ
शक्र-प्रेरित
वज्र देख
प्रभु वीर चरण युग
प्राप्त शरण
सरक्षण ।

उदीरणा

पूर्व ऋण
से
उऋण होने हेतु
आमन्त्रित कर
उदय में ला
भरपाई
कराना
यही तो उदीरणा
निर्जरणा ।

जैन

मरणासन्न को
खड़ा करे
संजीवन शक्ति
की मात्रा
'जन' पर जब
उबल लगे
भेद ज्ञान—
सम्यक् चर्या हो
तब
'जैन' नाम।

नम्रता

बाँस सहज ही
अकड़ा रहता
फल-युक्त
आम्र
अधिक झुकता
वह समूल
काटा जाता
यह
सिंचित हो
सेवा पाता,
सेवा देता
शोभा लेता !!

अग्नि-होत्री

ध्यानाग्नि
वेदी मे
अष्ट कर्म
समिधा
को
स्वाहा करे
वही है
अग्निहोत्री ।

पूजा-अहिंसा

धूलि धूसरित
श्रम खनन
अर्थ व्यय
कूप हेतु
अमृत जल-प्राप्ति
स्नपित-शुद्ध
तृषा शान्त
उद्देश्य शुद्धि
अहिंसा-भगवती
प्रश्नव्याकरणोक्ति।

भौतिक फल वाञ्छा

भौतिक इच्छा-पूर्ति
हेतु
धर्माचरण
वीतराग-सेवा
की
फल चाहना
चक्रवर्ती से
कौड़ी की
याचना !!

विषानुष्ठान

देव-पूजा
धर्माचरण
अनुष्ठान
यदि लक्षित—
लौकिक सुख
सांसारिक कामना
निःसन्देह
विषानुष्ठान ।

अमृतानुष्ठान

आत्मोपयोग में
सतत युक्त
एकाकार भाव
आशा-मुक्त
किया जाए
जो अनुष्ठान
वह है अमृत ।

भाव-मृत्यु

विनाशवान्
देहनाश
से भी
अधिक
दुःखद है
विभाव-परिणति से
आत्म-गुणों का घात ।

मायावी

निर्दोष-स्थिति
युक्त
मायाशील
व्यक्ति
भग्नदन्त
सर्पवत्
जनता का है
भय-स्थान।

साखी गोपाल

देह अपराध
आत्म-स्वीकृति
कर्तृत्वाभिमान
दण्डनीय
ज्ञाता-द्रष्टा
साक्ष्य भाव से
कर वेदन !
हो वन्दनीय।

चिकने कर्म

तैल-मर्दन
कर
रज लुण्ठनवत्
रसलिप्त
दशा का
बन्ध ।

शास्त्र भी शस्त्र

विषयुक्त
पात्र में
स्थित
अमृत भी
हलाहल
शास्त्र ज्ञान भी
कुमति के
हाथों पड़
होता
शस्त्र रूप ।

सत्पुरुष-प्रभाव

पारस छूने से
लोहा भी
होता परिवर्तित
कनक रूप
त्यों
सत्पुरुष का
वरद हस्त-स्पर्श
मस्तक पर—
बनता वह
आत्म-भूप ।

महामोहनीय कर्म

अविद्यमान गुण
स्तुति छामान्वित
गुरु
भाव अन्ध
करता
महा मोहनीय
चिर स्थिति
कर्म-बन्ध।

संत बोध

शिशु जन
पोषक
मातृ-दुग्ध
मुमुक्षु गण
हित
सन्त बोध।

महा अनुभूति

दर्शन
ज्ञान
चारित्र
सम्मिलित
सम्यक् प्रवृत्ति
महान् अनुभूति ।

केवली समुद्घात

भीगा वस्त्र पिण्ड
विस्तीर्ण किया
क्षण में सूखा
त्यों
आत्म-परमाणु
स्पर्श उऋण
विस्तीर्ण
केवली समुद्घात ।

सम्बन्ध अविच्छिन्न

लंगर

उठाये विना

चलाता रहा

पतवार

किन्तु

नौका

गतिहीन

वहीं की वहीं !!

हृदय-शुद्धि

हृदय मन्दिर
प्रभुवेदी
प्रतिष्ठा योग्य
मत भरो
अविचार-अखाद्य
का
कूड़ा कर्कट
फिर
प्रभु
विराजेंगे कहाँ ?

आहार

उदर—

उद्यान

फलाहारी

सात्त्विक

उपादेय।

उदर-श्मशान

अमिताहारी

तामसिक

हेय।

साहित्य

सत् साहित्य
ज्वाजल्यमान
सच्चा हीरा
जगाता
आत्म-ज्योति
इसके
विपरीत
घन अंधकार
काच-खण्ड
चुभने से
गल जाए चर्म
यह महा दण्ड।

सर्वार्थ सिद्ध

सिद्ध भगवान्
राजाधिराज
के
पांच युवराज
क्रमशः पाते
थे
अक्षय राज
क्षायिक दर्शन भर
पाँच अनुत्तर ।

गुणहीन नाम

अभिधान प्रभो !
शान्तिसागर
पुनः पुनः कृत
वही प्रश्न
वे क्रुद्ध हुए
परख लिया
नाम है
गुण नहीं ।

सच्चा भक्त

कण कण से
ध्वनि
कर्ण गोचर
नेत्रों के सम्मुख
वह मुद्रा
अंतर-तारों से
जुड़ा हृदय
नहीं क्षण विभक्त
वही
सच्चा भक्त।

अविचारी बोल

छूटा तीर
टूटा पत्ता
नहीं लौटता
त्यों ही
अविचार पूर्ण
वचन
जो घाव करे—
नहीं भरता।

रसनेन्द्रिय

कर्ण-घ्राण-चक्षु
हैं दो दो
कार्य
एक-एक
अर्पित।
दुर्दम रसना
को
उभय काम
संभाषण
भक्षण
तर्पित-मण्डित
अविवेक पूर्ण
सीमोल्लंघन
कृत यदि
आत्मा-देह
उभय दण्डित।

वर्ण-परिवर्त्तन

फोटोग्राफिक
कागज का
होता
वातावरण—
किरण से
वर्ण—
परिवर्तन।
कषाय भाव
से
आत्मिक लहरों—
लेश्याओं का
वैसा वर्त्तन।

खले गुह्यम्

जीर्ण होता
उदर भर
मेर धान्य
पर
गुप्त-रहस्य
जो तोल हीन
सर-तेल विद्युत्
नहीं पता पाता ।

त्याग

देह को
अपना मानना
देहाध्यास ।
उसे छोड़
जल-कमलवत्
रहना
त्याग ।

वैराग्य

जड़-पुद्गल
पर पदार्थ
ममत्व भाव
का
करे त्याग
वही
है
सत्य वैराग्य।

द्वादशांगी-सार

स्वरूप-निष्ठा
आत्म-स्थिरता
देह से भिन्न आत्मा
ज्ञेयों से भिन्न ज्ञान
वीतराग-दर्शन
परिणत करे
वह
प्रयोग-वीर
महान् ।

गुमनाम ज्ञान

गुमनाम गान
स्वकल्पना
अज्ञान
चढ़ा जो उन्मार्ग
होकर भ्रान्त
सद्गुरु
उसे
चढ़ाते मार्ग
करते
निर्भ्रान्त
बनता
प्रशान्त।

मगसिल पाषाण

श्रुत ज्ञान पढ़ा
स्वाध्याय किया
उस श्रुत जल से
नहीं स्नपित हुआ
ऊपर का ऊपर
निकल गया
ज्ञानी की
सद्वाणी
नहीं हृदय धरी
दो कर्ण-विवर से
बहा दिया
रहा प्राप्तिहीन
मगसिल पाषाण ।

भाव-हिंसा

कायिक क्रिया
असमर्थ
किन्तु
उन भावों ने
पाप बन्ध दुर्गति ।
तन्दुल मत्स्य
हिंसा परिणामी
जाता
सप्तम नरक गति ।

मगसिल पाषाण

श्रुत ज्ञान पढा
स्वाध्याय किया
उस श्रुत जल से
नहीं स्नपित हुआ
ऊपर का ऊपर
निकल गया
ज्ञानी की
सद्वाणी
नहीं हृदय धरी
दो कर्ण-विवर ने
बहा दिया
रहा प्रातिहीन
मगसिल पाषाण ।

भाव-हिंसा

कायिक क्रिया
असमर्थ
किन्तु
क्रूर भावों से
पाप बन्ध दुर्गति ।
तन्दुल मत्स्य
हिंस्र परिणामी
जाता
सप्तम नरक गति ।

भाव अहिंसक-श्रमण

अप्रमत्त भाव में

सतत रहें

करुणानिधि

उदय-भाव वर्ते

सावद्य योग

से

विरत, अनास्रवी

केवल

संवर अनुसरते

विस्वा बीस

दयाधारी

भाव श्रमण

होते सच्चे।

पाप श्रमण

महान् तपस्वी
क्रोधी हो
यदि
लाख वर्ष
चारित्र वृथा
ज्यों
घास ढेर
होता स्वाहा
पाप श्रमण
है
उसे कहा।

श्रमणोपासक

जिनभक्त-तत्वज्ञ
उदार-प्रामाणिक
श्रुतश्रोता-सेवा भावी
जड़-चेतन विवेकी
सम्यक्त्वधर
कर्त्तव्य परायण
वात्सल्य युक्त
निर्मोही
अणु-शिक्षा-गुण
व्रतधारक
श्रमणोपासक।

अनेकान्त दृष्टि

पर्यायों का
दृष्टिकोण,
सिद्धों के पन्द्रह
भेद कहे।
अभेदी आत्मिक दृष्टि है
एकान्त पक्ष को नहीं ग्रहे
मार्ग भिन्न होने पर भी
ध्येय एक है निर्विवाद
सम्यग्दर्शन जब प्रगट हुआ
तो बाह्य वेश का वृथा वाद
मरुदेवी गजशीर्ष स्थित
सिद्धि सौध को पा जाती
भरत आरीसा-भवन वीच
कर्मक्षय करते घन घाती।

पंच महाव्रत धारी !

पर-वस्तु-रमण
आत्म-गुण-घात
कैसा अहिंसक ?
पर पुद्गल को स्व कहना
है मृषावाद ,
कैसा सत्यवादी ?
बिन पुद्गल आज्ञा
करे ग्रहण,
कैसा अचौर्य व्रत ?
जड़ पुद्गल भोग
हुआ मैथुन
कैसा ब्रह्मचारी
नाम-रूप-पद-मूर्छा
परिग्रही
हो कैसे त्यागी

षड् लेश्या

कषायानुरंजित परिणाम
कहलाता है, लेश्या नाम
कर्म-पुद्गलों का वर्ण
शुद्धि से हो अर्जुन-स्वर्ण
क्रूर-हिंसक-निर्दय परिणाम
लेश्या कृष्ण वर्ण भी श्याम
ईर्ष्या अविद्या-कपट-प्रमाद
रसलोलुप-निर्लज्ज अमाप
लेश्या वर्ण नील, रतशील।
नास्तिक मिथ्यावादी वक्रचाल
कपोत लेश्या है काला-लाल
निरहंकार-नम्र-अमायी
विनीत-धर्मभृत-स्वाध्यायी
तेजोलेश्या रक्तिम वर्ण
अल्पकषाय जितेन्द्रिय शान्त मुद्रा
संयम भावी पद्म वर्ण हरिद्रा
आर्त्त रौद्र हीन-धर्म शुक्ल लीन
वीतराग भावोन्मुख
श्वेत वर्ण लेश्या है शुक्ल।

स्व गुण स्तुति से हर्ष निषेध

पर कृत
स्तुति-गुण वर्णन को
अपने में
सचमुच
गुणमाने
औचित्य नहीं है
किन्तु
अपनी
न्यूनताओं को
पूर्ण करने में
सचेष्ट रहे,
वह मार्ग सही है।

चण्डकौशिक-बोध

दृष्टि विष
चण्डकौशिक
प्रतिबोध हेतु
मौन, ध्यानावस्थित
दशन चरण
दुग्ध धार
प्रभाव-विस्मित
भाव प्रक्षिप्त
ब्रह्मरन्ध्र मार्ग
वह भाव सिक्त
बोधि प्राप्त
पादोपगमन
आवरण समाप्त
प्रभु का उपसर्ग
तद्‌गति अष्टम स्वर्ग।

वृथा अभिमान

सन्ध्या समय
आकाश ने
अपने
विविधवर्ण-दृश्यों का
दर्प किया
सूर्य रुष्ट
अस्ताचल गमन
स्थित प्रकृत
आकाशीय रंग।

प्रकृति-शक्ति

वायुयान
अभिमान पूर्ण
कथन
कृत विजय व्योम
पक्षी गणोक्ति
कोटि-कोटि का
द्रव्य व्यय
हम विना व्यय
एकाधिकार
निज
सगठित शक्ति से
ली टक्कर
वायुयान
क्षतिग्रस्त
धराशायी ।

अनावृत

सूर्य से मेघोक्ति
हमने तुम्हें
किया आवृत
उसका उत्तर—
भ्रान्त हो,
मैं हूँ अनावृत
पूर्ण तेजस्वी
स्वयं प्रकाशी
आवृत पृथ्वी
तद्गत पदार्थ
कर्म मलयुक्त
मैं तो हूँ
निर्मल आत्मा।

अभिमान चूर्ण

षट्खण्ड विजेता
सेनापति का
अभिमान उतारा
चक्री ने
जब गर्वित था
पटरानी
स्त्री-रत्न ने
तिलक हेतु
चिउँटी से
कर चूर्णवत्
किये चावल।

नश्वर देह

पाँच भौतिक की देह ने
कहा—नाथ !
मैंने आपकी
उपस्थिति में
आनन्द लिया
अब मत त्यागो !
आत्म-कथन—
भाड़े का घर
हो गया
डिफाल्टर
अब तुम
श्मशान की
मिल्कियत।

अबंध युक्ति

प्रतिबिम्बित
दृश्य सकल
कैमरे के लैंस में
दोष नहीं
स्वभाव है
कर्त्तृत्वाभिमान
भाव मन
का
बटन दबेगा
तभी
बंध होगा।

बंध-निर्मूल

स्नेह सिक्त रज
निकाचित
तीन बन्ध
रूखी बात्
नहीं
समझना
मिथ्या-दुष्कृत
जो की भूल
हो जाता बंध निर्मूल।

शास्त्र-परिणति

सम्यग् द्रष्टा को
मिथ्या-शास्त्र
भी
सापेक्ष सत्य
मिथ्या-दृष्टि के
आगम भी अज्ञान
साढे नौ पूर्व
अध्येता
अभव्य
कोरड्डू धान ।

आत्मिक करेण्ट

सद्गुरु प्रदत्त मन्त्र
उसमें जोड़े आत्म-तन्त्र
आत्म-वीर्य उल्लास युक्त
उपयोग निकरण
कर ध्यान सतत
चित्त एकाग्र
गत भाव व्यग्र
चौसठ प्रहरी
पीपल वत
आत्मिक करेण्ट
स्वात्मसम्मान
शक्ति प्राकट्य।

अनन्तानुबन्धी कषाय

परिग्रह आसक्ति-प्रेम
अनन्तानुबन्धी लोभ
स्वदोष गुप्त
माया-युक्त
स्वच्छंद प्रयाण
अनन्तानुबन्धी मान
सन्मार्ग दर्शक —
सद्बोधक
का
निरादर क्षोभ
वही
अनन्तानुबन्धी क्रोध ।

सम्यक्त्व बाधक

क्रोध-मान-माया-लोभ
जिसके अनन्तानुबन्धी
करे दृष्टि अन्धी
मिथ्यात्व मोह
मिश्र मोह
सम्यक्त्व मोह
करे आत्म गुणों से द्रोह
इन सातों का क्षय
तब
सम्यक्त्व उदय।

आत्म-स्वभाव-गमन

मिथ्यात्व मोह
अन्धकार
देह-आत्मा मानना
एकाकार
ज्ञानसूर्य
सम्यक्त्व प्रकाश
जब चिदाकाश
तब भावपूर्ण
होता प्रभात
ज्ञायक ज्ञेयों का
पृथक् रूप
तभी शुष्क
संसार कूप ।

सम्यक् चारित्र

आत्म-भान-विहीन
तप-जप-क्रिया
नहीं करती कर्मक्षीण
नींवहीन भवन
पानी पर जड़
मोह-निद्रा हटा
करे जो पकड़
आत्म जागृति
तभी
सम्यक् विरति ।

तिलक रहस्य

ललाट पर
केसरिया
चन्दन तिलक
लक्ष्य स्थिर कर
आज्ञा चक्र पर
मोहनीय
किलाबंदी
तोड़ने का निशाना
जिनाज्ञा शिरोधार्य
चिह्न
सौम्यता—
शान्ति—
प्रेम का
प्रतीक।

भक्ति महत्व

धान्य सिद्ध कारक
वैश्वानर
किन्तु
सहायक है
पानी।
कोराधान
दग्ध हो जाता
चित्त पात्र में
ज्ञान-भक्ति
जल मिश्रण
है मोक्ष निशानी।

उपेक्षा

कीचड़ में
पत्थर प्रक्षेप
नकटे को
आरसी दर्शन
हितकर नहीं ।
उपेक्षा
उचित
सही ।

स्वयं प्रतिघात

बड़ों का

अपमान

अपशब्द

ये तो अलिप्त

सूर्य के

समक्ष

धूलि

प्रक्षेपवत् ।

चारित्र आज्ञा

एक बीहड़ पथ
अभिनिष्क्रमण
सम्यक् चरण
तिमिरपूर्ण
कण्टकाकीर्ण
मत कर गमन
अल्हड़ भोले।
सुकुमार चरण
विस्तीर्ण धरणि
मोम तुरग आरूढ़ चलन
प्रसृत अगारे
स्फुलिंग शोले
परिधान
महाव्रत कवच
अग्नि निरोधक
महाकठिन
असिधार चलन
नही किंचित् डर
है पुष्प पगार
आयस-चण चर्वण
हों भग्न दशन

दैवी सहाय्य

निविड़ निकाचित

भवितव्य

कर्म रेख

मिटा न सकते देव

क्षय प्राय देख

करते सहाय

अंगुलीय धर्म ।

काकतालीय न्याय ।

(शेषांश पृष्ठ १२३ का)

ध्यानाग्नि गलन

हों हीन शीर्ण

नहीं करें कम्पन

ये भीरु वचन

नहीं है शोभन

पर मदन गमन

महा भय पूर्ण

यह निज प्रांगण

निर्भर निःशंक

कर

अगम गम ।

मिथ्यादृष्टि देव मान्यता

त्रैलोक्यनाथ
जिनवर चरण
छोड़कर
मिथ्यादृष्टि
देवों का
मान्य करण
चिन्तामणि रत्न
त्याग
काच खण्ड
ग्रहण
चौरासी भ्रमण।

आरती

आर्य संस्कृति
उच्चादर्श
उल्लासपूर्ण
करते स्पर्श
पंच ज्ञान
सप्त नय प्रतीक
प्रदीप्त ज्योतिर्मय
सर्व दीप
देव-गुरु-ज्ञान
बन्धु-वीर-नरपति-महान्
वरराज-वधू
सम्मुख उतारती
आर्त्तध्यान वारक
यही आरती ।

प्रतिमा से बोध

स्वयभूरमण
समुद्र आदि म
रहते
मत्स्य
समग्र प्रकार
जिन प्रतिमा
आकार देख
बोधि बीज
पा जाते सार।

प्रकाश अन्तर में

प्रस्फुटित गन्ध
कस्तूरी
मृग अनुसंधान
भटक हारा
बाहर देखा
नहीं अन्तर्ज्ञान
है नाभिचक्र
सौरभकारा
मानव भी
अप्राप्त भटकता
अन्तर आतम
है उजियारा।

निराश-हताश

मकरन्द मुग्ध
गुंजारव कर
हो थकित भ्रमर
मरुभूमि पर
लता-मालती-पारिजात
केतकी-कमल
जाई-गुलाब
शोधार्थ-डगर
अप्राप्त
चम्पक दृष्टि पथ
नहीं प्रेम लेश
रंग रूप देख
गुंजत विशेष
गुणहीन किंशुक
पुष्प मिला
भग्न हृदयगत
आशा खिला।

माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ

घृत पात्र हस्तगत
भ्रमण किया
नहीं बूँद मात्र
गिरने पाया
द्वात्रिंशत् नाटक
ठौर-ठौर
नहीं प्रेक्षणार्थ
मन ललचाया
भर एक
मृत्यु आसक्ति
अनासक्त जीवन
'आयार' कथन वही
माराभिसंकी—
मरणा पमुच्चइ ।

खणं जाणाहि पंडिए

क्षणमात्र
आयुष्य वृद्धि हित
प्रस्तुत है
षट् खण्ड राज्य
तीर्थंकरादि असमर्थ
किन्तु
खोते हम
आलस्य प्रमाद मे
क्षण का मूल्य
नहीं पहचाना।
अनन्त काल
खडिए
आचारागोक्ति
हृदय धरें
खण जाणाहि पंडिए।

अकत्राण रमणी

कण्टक विद्ध
मत्स्य रसनावश
रस-लोलुपता
त्याग कठिन।
जीभ स्वादवश
अण्ट-सण्ट भर
विकृति रोग परिणमन।
भोगे उदर
दोष जिह्वा का
इसे विजेता
महामुनी
शास्त्र वाक्य सत्र
अकत्राण रमणी।

कम्माण मोहणी

जड़-पुद्गल
माध्यम
ममत्व-बोध
शत्रु-मित्र-विपरीत
भाव-प्राप्ति
आत्मा अरूपी
निर्लेप
कर आत्म शोध
पर्याय दृष्टि छोड़
चिरस्थिति मोहनीय
की हो समाप्ति
विजय-मार्ग रोहणी
कही जो दुष्कर
कम्माण मोहणी।

अप्प नाणेण मुणी होई

नहीं भाव साधुत्व
अप्राप्त शुद्ध सम्यक्त्व
मुखवस्त्रिका-रजोहरण
साधु वेशोपकरण
लगाए मेरुवत् ढेर
नहीं मिटे भव-भ्रमण
उदय जब ज्ञान भानु का
नहीं पुद्गल सुख मोही
यही महावीर की वाणी
अप्प नाणेण मुणी होई ।

छाया

देखती हो
दर्पण मे
किन्तु
उसमे
तुम नहीं
स्वदेह में
हो स्थित
वह
छाया मात्र
कही ।

प्रतिक्रमण

दुश्चिन्तित
दुर्भाषित
दुश्चेष्टित
प्रवृत्ति
व्यापार का
दुष्कृत
मिथ्याकरण
सहित
प्रतिक्रमण ।

उट्ठिए नो पमायए

मोह नींद वश
रह सुप्त
खोता है
अनुपम
क्षण अवसर।
अविरति-प्रमाद—
कषाय-भाव वश
करता कर्मबन्ध
गुरुतर।
जागृत
प्रतिक्षण
रह प्राणी
जिन प्रवचन का
सार यह
सदुपयोग करो
शुभ अवसर का
उट्ठिए नो पमायए।

अनुष्ठान-भेद

इह-परलोक
प्राप्ति-सुख-वांछा
है विष-गरलमयी
अनुष्ठान
भव-भ्रमण हेतु है
देखा-देखी
तृतीय अन्योन्यानुष्ठान
आत्मिक सहज दशा प्राप्ति का
लक्ष्य शुद्ध
संवर-निर्जरा तत्वयुक्त
तद्धेतु अनुष्ठान
कान्ता स्थिरा दृष्टियुत
साधन अमृत
आत्म-निष्ठ
प्रभा-परा दृष्टि
मोक्षदाता
अमृतानुष्ठान ।

पुद्गल वोसिराना

छोड कलेवर
अनन्त भवों मे
क्रिया-परम्परा
प्रवहमान
लगते सूक्ष्म
कर्म-परमाणु
विद्युत् गति
त्याग आवश्यक जान
जिन भाषित विधि
मार्ग साफ
पुद्गल विसर्जन
करेण्ट-ऑफ।

अभय लक्षण

अध्येता हो नव पूर्व ज्ञान
गति करना नव ग्रैवेयक समान
नहीं वैमानाधिपति, इन्द्र
परमाधार्मिक नहीं चौदह रत्न
नहीं पुष्प चढ़े जिनवर चरण
पृथ्वीकाय नहीं प्रतिमा निर्माण
नहीं होता आत्म-प्रतीति-ज्ञान
नहीं प्रश्न उदय भव्य अभव्य ?
अन्तर्गत नहीं वैराग्य सित
रहता मिथ्यात्वी नहीं सम्यक्त्व
आगम से सही अभव्य जान
निरन्तर अनिद्य कोरा ध्यान।

पुद्गल वोसिराना

छोट कलेवर
अनन्त भवों में
क्रिया-परम्परा
प्रवहमान
लगते सूक्ष्म
कर्म-परमाणु
विद्युत् गति
त्याग आवश्यक ज्ञान
जिन भाषित विधि
मार्ग साफ
पुद्गल विसर्जन
करेण्ट-ऑफ।

अभव्य लक्षण

अध्येता हो नव पूर्व ज्ञान
गति करता नव ग्रैवेयक समान
नहीं वैमानाधिपति, इन्द्र
परमाधार्मिक नहीं चौदह रत्न
नहीं पुष्प चढ़े जिनवर चरण
पृथ्वीकाय नहीं प्रतिमा निर्माण
नहीं होता आत्म-प्रतीति-ज्ञान
नहीं प्रश्न उदय भव्य अभव्य ?
अन्तर्गत नहीं वैराग्य सिक्त
रहता मिथ्यात्वी नहीं सम्यक्त्व
लक्षण ये सही अभव्य जान
निकले असिद्ध कोरडू धान ।

पौषध

है गृहस्थ
परन्तु अनारम्भ
नहीं गोचरी
कहलाता निर्ग्रन्थ
साधु क्रियाधर
नहीं विहार
अकिंचन पर
धन धान्य धार
जिन आगम में
यह भव औषध
श्रमण-क्रिया
श्रावक पौषध ।

गुण-ग्राहकता

मृत श्वान-गंध, पर
ध्यान नहीं
मुक्तावत् दशन
सराहे।
अरिष्टनेमि के परम भक्त
लक्ष्य चले
तज चौराहे।
त्रिखण्डपति
श्रीकृष्ण
तभी
भावी तीर्थाधिप
बन पाए।

क्षमाशील

सूर्य
क्षमाशील है
शीत
मिटाने के हेतु
पीठ देकर बैठते
परन्तु
अग्नि तापने को
पीठ दोगे
तो
वह
क्या क्षमा करेगी

पर-स्त्री

सूर्य महान है
दर्शनीय-वन्दनीय
पर ताकने योग्य नहीं
परस्त्री पर
दृष्टि पड़ी
तद्वत्
दृष्टि नीची करने की
शिक्षा
यही है
पवित्रता की रक्षा ।

जिनवाणी-अनेकान्त

ब्रह्म ओज
क्षात्र तेज
जैन धर्म का
मार्ग मोक्ष
सर्वज्ञ गुरु
महावीर प्रदत्त
गणधर गण को
आत्म ज्ञान का
अमृत बोध ।
द्वादशांगी सप्रमाण
त्रिपदी में विस्तृत
पूर्व ज्ञान ।
त्रिकाल अबाधित
परम शान्त
सत्य, अहिंसा,
अनेकान्त ।